International Journal in Commerce, IT and Social Sciences
Volume 5 Issue 09, September 2018 ISSN: 2394-5702 Impact Factor: 4.218
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

प्राथमिक छात्रों को पढ़ाने में चुनौतियां एवं उनके समाधान का अध्यन

Bhagat Singh Negi, Dr Omkarnath Mishra
Department of Education
OPJS University, Churu (Rajasthan) – India

सार

प्राथमिक शिक्षा का महत्व तथा हमारे छात्रो में प्राथमिक शिक्षा के प्रति रूचि उत्पन्न करने हेतु हमारा कर्तव्य बनता है कि हम एक प्रभावशाली शिक्षण अधिगम रणनीति अपनाए । इसलिए वाणिज्य विषय में सहकारी अधिगम के अनुप्रयोग को न्यायसंगत करने के लिए इस शोध कार्य को योजनाबद्ध किया गया हैं । पूर्व में आयोजित किये गए अनुस ंधानों के अध्ययन से ज्ञात होता हैं कि सहकारी अधिगम तकनीक का क्षेत्र बहुत व्यापक हैं । इस तकनीक के प्रयोग द्वारा न केवल छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती हैं वरन छात्रों के आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, सामाजिक कौशल, अभिवृति कौशल, अभिधारण क्षमता, भाषा, वर्तनी, व्यवहार, समीक्षात्मक सोच, समूह कौशल पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता हैं । इसलिए छात्रों के विकास के लिए इस क्षेत्र में शोध कार्य करना आवयश्क हो जाता हैं । इस शोध कार्य का उद्देश्य हरियाणा राज्य के वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय के वाणिज्य स ंकाय के छात्रो की शैक्षिक उपलब्धि पर सहकारी अधिगम का प्रभाव का पता लगाना हैं । यह अध्ययन अध्यापकों के लिए सहायक होने के साथ साथ छात्रों के लिए भी लाभदायक हैं । इसके आलावा यह शिक्षाविदों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओ के लिए भी एक उपयोगी अध्ययन हैं ।

1. प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ

महान दार्शनिक और शिक्षाविद डॉ. राधाकृष्ण मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए शिक्षा को सर्वाधिक आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार, शिक्षा वह है, जो मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने के साथ–साथ उसके हृदय एंव आत्मा का विकास करती है। शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर कहा जाता है कि शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए सबसे जरूरी हथियार है और किसी भी राष्ट्र के विकास में शिक्षा एक बुनियादी तत्व है। नेल्सन मंडेला के अनुसार "शिक्षा सबसे ताकतवर हथियार है जिसे आप दुनिया बदलने के लिए इस्तेमाल कर सकते हो।"शिक्षा का मतलब केवल पाठ्यपुस्तकों से सीखना भर नहीं है अपितु शिक्षा व्यक्ति के ज्ञान, मूल्यों,कौशलों और क्षमताओं का विकास करती है,शिक्षा व्यक्ति के खुद के विकास के साथ–साथ समाज और राष्ट्र के विकास के लिए प्रेरित करती है। अतः शिक्षा व्यक्ति के खुद के विकास के साथ समाज और एक राष्ट्र के लिए बहुत जरूरी है। शिक्षा के माध्यम से बढ़ती जनसंख्या, गरीबी,सांप्रदायिकता,लिंगभेद जैसी समस्याओं से निपटा जा सकता है।

भारत में साक्षरता दर की बात करें तो जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार साक्षरता दर बढ़ कर 74.04 फीसद हो गई है। इसमें पुरुष साक्षरता दर 82.14 फीसद और महिला साक्षरता दर 65.46 फीसद दर्ज की गई है। लेकिन अभी भी यह विश्व की औसत साक्षरता दर 84 फीसद से बहुत कम है।चिंताजनक पहलू यह है किसंयुक्त राष्ट्र की 'एडुकेशन फॉर ऑल ग्लोबल मोनिटरिंग रिपोर्ट' के अनुसार भारत में 28.7 करोड़ व्यस्क निरक्षर है। जो कि दुनिया भर कि निरक्षर आबादी का कुल 37 फीसद है। देश में कम साक्षरता दर का कारण लोगों में शिक्षा केप्रति जागरूकता की कमी के अलावा शिक्षा–प्राप्त लोगों का बेरोजगार होना भी है।

नेस्कोम की हालिया रिपोर्ट के अनुसार हर वर्ष भारत में 30 लाख छात्र स्नातक और स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल करते हैं। जिनमें से केवल 25 फीसद तकनीकी स्ट्रीम व 10–15 फीसद आर्ट्स स्ट्रीम के स्नातकों को नौकरी मिल पाती है।, लेबर ब्यूरो, चंडीगढ़ के सर्वे 'यूथ इम्प्लोयमेंट–अनइम्प्लोयमेंट सिनारिओ, 2012–2013' के आंकड़ों क अनुसार 15–29 साल की उम्र के हर तीन स्नातकों में से एक स्नातक बेरोजगार है। इंडिया स्किल्स (स्किल्स ट्रेनिंग कंपनी) के रीजनल मेनेजर कपिल देवरूखकर बताते है कि वर्तमान में तकनीकी स्ट्रीम से 70 फीसद स्नातक और आर्ट्स स्ट्रीम से 85 फीसद स्नातक या तो

बेरोजगार हैं या फिर अर्धरोजगार हैं। क्योंकि छात्रो की गुणवत्ता और बाजार की जरूरतों मे भारी अंतर हैं। इसलिए उनको उनकी गुणवत्ता कि वजह से नामंजूर कर दिया जाता है।

शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है 'प्राथमिक शिक्षा' क्योंकि प्राथमिक शिक्षा ही आगे की शिक्षा का मजबूत आधार बनती है। अगर कोई बच्चा गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर लेता है तो उसकी आगे की शिक्षा के लिए एक मजबूत आधार बन जाता है। सामान्य तौर पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का अर्थ ऐसी शिक्षा से लगाया जाता है जो बच्चे को रटने से दूर ले जाती हो तथा केवल जानकारो आधारित ना हो बल्कि अवधारणाओं की समझ पर हो। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की प्रचलित शब्दावली के अनुसार ऐसी शिक्षा जो 'शिक्षक व पुस्तक केन्द्रित' के स्थान पर 'बाल केन्द्रित' शिक्षा हो तथा बच्चे के ज्ञान, मूल्यों, कौशलों और क्षमताओं का विकास करती हो।तो प्रश्न उठता है कि हमारी प्राथमिक शिक्षा कैसी हो? जिससे बच्चे की आगे की शिक्षा के लिए मजबूत आधार मिल सके और जो बच्चे को तार्किक समझ के विकास के साथ स्वावलंबी बनने में सहायक हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने अनुच्छेद–45 के जरिये 1951 में यह वायदा किया था कि राज्य इस संविधान के लागू होने की तारीख से दस साल के भीतर चौदह वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रयास करेगा।लेकिन कानून के रूप में इसको अमलीयजामा पहनाने मेंछह दशक से ज्यादा समय लग गया। आखिरकार विभिन्न कमिशनों ओर समितियों की सिफारिशों के बाद यह कानून 2009 में भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के तहत सामने आया और 1 अप्रैल 2010 को लागू किया गया। इसके बाद से शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाया गया और राज्यों को जिम्मेदारी दी गई कि प्रत्येक बच्चे को प्राथमिक शिक्षा देना सुनिश्चित किया जाये।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम कानून के तहत शिक्षा की गुणवत्ता, सामाजिक दायित्व, निजी स्कूलों में आरक्षण,छात्र–शिक्षक अनुपात,पीने का पानी, शौचालय, स्कूल कीदीवारें और स्कूलों में बच्चों के प्रवेश को नौकरशाही से मुक्त कराने का प्रावधान किया गया है।अधिनियम के लागू होते ही भारत आधे–अधूरे रूप से उन देशों की सूची में शामिल हो गया जो बच्चों को निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए कानूनन जवाबदेह हैं।इस अधिनियम को साक्षारता की दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया। क्योंकि इसके लागू होने के बाद छह से चौदह साल की उम्र के बच्चे के लिए 'शिक्षा का अधिकार'मौलिक अधिकार बन गया। लेकिन शिक्षा का अधिकार अधिनियम कान्न के बावजूद देश में प्राथमिक शिक्षा के नतीजों में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया। अधिनियम के लागू होने के पाँच वर्ष बाद सुधार कम और कमियाँ ज्यादा नजर आने लगी है। आज भी इसको जमीनी स्तर पर लागू कराने में भी पूरी तरह से कामयाबी नहीं मिल सकी है।अधिनियम को लागू करने के लिए सरकार ने स्कूलों को तीन साल का समय दिया था जो मार्च–2013 में पूरा हो गया है। लेकिन रिपोर्ट के अनुसार मार्च–2013 तक देश के महज आठ फीसद स्कूलोंमें यह कानून पूर्ण रूप से लागू किया जा सका है।मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जनवरी 2014 शिक्षा के अधिकार अधिनियम कानून के क्रियान्वयन को लेकर जारी रिपोर्ट के अनुसार भौतिक मानकों जैसे स्कूलों की अधोसरंचना, छात्र–शिक्षक अनुपात आदि को लेकर स्कूलों में सुधार देखने को मिलता है। लेकिन प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता मे बहुत कमी आई है।

शिक्षकों के मुताबिक प्राथमिक स्तरपर शिक्षा की गुणवत्ता की कमी में शिक्षा का अधिकार अधिनियम कानून की बड़ी भूमिका रही है।इस कानून का एक बहुत ही चर्चित प्रावधान है कि आरंभिक शिक्षा (कक्षा 1 से 8 तक) पूर्ण होने तक किसी भी कक्षा में छात्र को रोका नही जाएगा।इस संबंधमें आप अगर शिक्षकों कि राय जानना चाहोगे तो वो इससे खुश नही है।ज्यादातर शिक्षकों का मानना है कि इसकी वजह से बच्चे पढ़ाई पर ध्यान नही देते है।इसलिए छात्र की गुणवत्ता में कमी आ जाती है और वो पिछली कक्षा के बारे में ठीक से जाने बिना ही अगली कक्षामें चला जाता है।

ग्रामीण भारत के स्कूलों पर सर्वे करने वाले स्वयसेवी संगठन प्रथम की 'असर–2014'रिपोर्ट के अनुसार,कक्षा पाँच के पचास फीसद बच्चे कक्षा दो की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों को नहीं पढ़ पाते है, कक्षा पाँच के पचास फीसद बच्चे कक्षा दो के दो अंकों वाले साधारण घटा का सवाल भी नहीं कर पाते है, कक्षा सात के पच्चीस फीसद बच्चे कक्षा दो के साधारण वाक्य नहीं पढ़ पाते है, कक्षा आठ के पचास फीसद बच्चे कक्षा पाँच का साधारण सा भाग का सवाल नहीं कर पाते है इत्यादि। तो प्रश्न

उठता है कि एक बच्चा पाँच–छह साल स्कूल में पढ़ने के बाद भी हिन्दी भाषा के सामान्य वाक्य भीनही पढ़ पाता है, सामान्य सा जोड़–घटाव का सवाल भी नहीं कर पाता हैं। तो यह कैसी शिक्षा है?किसी भी व्यक्ति के लिए इस प्रकार की शिक्षा का क्या महत्व है? ऐसी शिक्षा पाकर बच्चे भविष्य में कुछ कर पाएंगे?इत्यादि।

लेकिन शिक्षाविदों के अनुसार पिछले कई दशकों से फेल–पास करने की पद्धति चली आ रही तब हम शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार नही कर पाये हैंतो अब फेल–पास करने से सुधार कैसे आ सकता है।यदि परीक्षा से ही शिक्षा की गुणवत्ता सुधरती तो आज हम इस मुकाम पर नहीं पहुँचते।साथ ही उनका मानना है कि कोई भी विस्तृत अध्ययन यह नहीं बताता है कि कक्षा 5 या कक्षा 8 में पास हुए और इन्हीं कक्षाओं में फेल किए गए बच्चों के सीखे गए में क्या अंतर है? अगर कोई ऐसा विस्तृत अध्ययन होता तो वह यह सिद्ध ही करता कि दोनों तरह के बच्चों में खास विशेषताएँ है जिन्हें एक व्यवस्था के नाते हम समझ नहीं पाये है।साथ ही उनका मानना है कि बच्चे की गुणवत्ता में सुधार केवल बोर्ड की परीक्षा लेने से नहीं आ सकता बल्कि परीक्षा तंत्र बच्चों को स्कूल से बाहर धकेलता है जबकि बच्चे का सतत एंव व्यापक मूल्यांकन होना चाहिए ना कि किसी खास दिन परीक्षा लेकर बच्चे का मूल्यांकन किया जाए क्योंकि कुछ घंटों की परीक्षा मात्र से बच्चों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता हैं। शिक्षाविदों के मुताबिक शिक्षक बच्चे को फेल ना करने के नियम की अवधारणा को ठीक से समझ नहीं पाये हैं क्योंकि जो बात शिक्षा का अधिकार अधिनियम–2009 कहता है वही बात लगभग पिछले कई दशकों से देश के विभिन्न दस्तावेज करते आए है। कोठारी कमीशन से लेकर नई शिक्षा नीति 1989 तक और अब एनसीएफ–2005 शिक्षा में अकादमिक स्तर को बढ़ाने तथा बच्चे के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने की वकालत करते आए है। जिसके अनुसार वे "सतत एंव व्यापक मूल्यांकन" को एक बेहतर विकल्प के रूप में सुझाते है।

दूसरी और अधिनियम के तहत जो छात्र–शिक्षक अनुपात बताया गया है।उसके अनुसार प्राइमरी स्कूल में दो शिक्षक और तीस छात्रों पर एक शिक्षक होना जरूरी है। जब राज्यों से इस अनुपात का आंकड़ा मांगा जाता है तो अधिकतर राज्य इसे देश की प्रति व्यक्ति आय की तरह पेश करते है। उदाहरण के लिए दो करोड़पती लोगों की आय को दस लोगों के साथ जोड़कर उसे बारह से भाग दे दिया जाता है ऐसे में अन्य दस लोगों की आय भी ठीक–ठाक लगने लगती है। यही हाल शिक्षा के क्षेत्र में भी है। विभाग के कर्मचारी कुल छात्रों और कुल शिक्षकों की गिनती से यह अनुपात पैदा कर देते हैं। कुल छात्र बराबर कुल शिक्षक जबकि हकीकत यह है शहरों के पास के स्कूलों में दस–दस शिक्षक मौजूद हैं।लेकिन दूरस्थ ग्रामीण इलाकों के स्कूलतरह–तरह के कामों के बोझ तले दबे एक ही शिक्षक के भरोसे चल रहे है। ऐसे विद्यालयों में गुणात्मक शिक्षण की कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

एक तरफ अधिनियम की धारा–27 में लिखा है। शिक्षकों को किसी भी प्रकार के गैर–शिक्षण कार्य में नहीं लगाया जाएगा।लेकिन दूसरी तरफ उसी अधिनियम की धारा–27एमें लिखा है कि लोकसभा, विधानसभा और स्थानीय निकाय चुनावो के साथ जनगणना और आपदा राहत में शिक्षको को कार्य करना होगा। अब सिर्फ चुनावों के ही कार्यों में शिक्षको का काफी समय खराब हो जाता है।एक शिक्षक के अनुसार "सरकार हमें जिस काम की तनख्वाह देती है। उसे छोड़कर हम से सारे काम करवाती है। वोटर कार्ड बनाना, आधार कार्ड बनाना, छात्र बैंक अकाउंट खुलवाना, राशन कार्ड, स्कूलों की इमारत बनवाना, मिड–डे–मील के लिए राशन खरीदना, जनगणना इत्यादि।" इस प्रकार के अन्य कार्यों की वजह से शिक्षक बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। क्योंकि उसका ज्यादातर समय तो इन कार्यों को करने में ही निकल जाता है।

आज इस कानून के लागू होने के बाद प्राथमिक स्तर पर लगभग 96 फीसद से ज्यादा बच्चे स्कूलोंमें है। हालांकि 96 फीसद आबादी दाखिला लेती है लेकिन 71 फीसद बच्चे विद्यालय जाते हैं।आज भी लगभग साठ लाख से ज्यादा बच्चे स्कूलों से बाहर है, पूरे देश में प्राथमिक स्तर पर हजारों शिक्षकों के पद खाली हैं,केवल 49.3 फीसद स्कूल ही छात्र–अध्यापको अनुपात को पूरा करते हैं। आज भी हमारे पास 0–6 और 14–18 साल के बच्चों के लिए कोई भावी योजना नहीं है। हाँ इतना जरूर है कि हमने प्राथमिक स्तर पर नामांकन 96 फीसद से ज्यादा हासिल कर लिया है और देश की साक्षरता दर भी बढ़ रही है यदि आप साक्षरता दर के बढ़ने को अपनी उपलब्धि मान रहे है तो यह जानना भी जरूरी ह कि इसके लिए भारत सरकार एक साल में लगभग डेढ़ लाख करोड़ रुपए खर्च कर रही है यानि सरकार के पास इन बच्चों को देने के लिए पैसे की कमी

नहीं है। इतना भारी बजट है, रोज का भोजन है, स्कूल की यूनिफोर्म है, किताबें है और साथ ही वजीफा भी। बस सिर्फ गुणवत्ता वाली शिक्षा नही है।

शिक्षा में गुणात्मक सुधार हेत, आज हमें कई स्तरों पर काम करने की आवश्यकता है और वे संभावित स्तर है–पाठ्यपुस्तकों को व्यवहारिक बनाते हुए खुद की समझ में आने वाली शैली में गढ़े जाना तथा पाठ्यपुस्तकों में बच्चों को कुछ करने के अधिकाधिक अवसर प्रदान किए जाना, शिक्षण की शैली को रचनवादी शिक्षण के लिहाज से किए जाना, विषयों का अध्यापन विषयों की प्रकृति के मान से किया जाना आदि। इसके अलावा सभी विद्यालयों में कक्षा और विषय के मान से शिक्षकों की व्यवस्था,विद्यालय में लाइब्रेरी की उपलब्धता आर उपयोग किया जाना, शिक्षक प्रशिक्षण को व्यवहारिक रूप में किए जाने के साथ 'सतत एंव व्यापक मूल्यांकन' की अवधारणा पर काम करते हुए उसकी मंशा के अनुसार लागू करना।

लेकिन सबसे पहले आवश्यकता है इस बात की है कि हमारे देश के लिए पर्याप्त शिक्षक जुटाए जाएँ जिन्हें पर्याप्त वेतन एंव अन्य सुविधाएं मुहैया कराई जावें।इसके लिए अच्छे शिक्षक तैयार करने की पहल जरूरी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर डिप्लोमा इन एडुकेशन (डी.एड.) और बैचलर ऑफ एडुकेशन (बी.एड.) कोर्स कराये जाते है। ये संस्थान मात्र सैद्धातिक विषय पढ़ा कर अपना दायित्व निभा देते है हालांकि कुछ राज्यों में इन कोर्सों में कुछ महीने तक स्कूल में पढ़ाना भी जरूरी होता है लेकिन वो केवल नाममात्र होता है। इस प्रकार नए शिक्षक को विद्यालय की स्थानीय परिस्थितियों एंव समस्याओं के बारें में कोई व्यवहारिक ज्ञान नहीं होता है।इसलिए सुधार हेतु हमें शिक्षक–प्रशिक्षणों के पाठ्यक्रमों में आमूल–चूल परिवर्तन करना होगा। वर्तमान में लोग अपनी रुचि से शिक्षक–प्रशिक्षण में नहीं आते है। बेरोजगारों को जब कोई अन्य कार्य नहीं मिलता तो मजबूरी में वो लोग अपनी रुचि के बिना शिक्षक–प्रशिक्षण में आ जाते है। अतः रुचि के विरुद्ध कार्य करने वालों से गुणवत्ता की उम्मीद करना बेमानी होगा। शिक्षक–प्रशिक्षण चयन प्रक्रिया ऐसी हो कि जिसके प्रशिक्षण में केवल वो ही लोग चयनित हो जिन्हें शिक्षण कार्य के प्रति आंतरिक लगाव हो। इसलिए शिक्षा में गणवत्ता के लिए शिक्षक शिक्षा को बेहतर बनाना जरूरी है अगर शिक्षक शिक्षा को हम बेहतर कर पाते है तो जमीनी स्तर पर इसके सार्थक प्रभाव जरूर देखने को मिलेंगे।यह एक चुनौतीपूर्ण व लंबी प्रक्रिया है। लेकिन ऐसा नहीं है कि सरकारी विद्यालयों में सीखना–सिखाना नहीं हो रहा है बल्कि शिक्षकों के प्रयासों से सकारात्मक बदलाव भी दिखाई दे रहे है। जरूरत बस इस बात की है शिक्षकों के इस तरह के प्रयासों को गति दी जाए। फिलहाल नई शिक्षा नीति पर काम कर रही भारत सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती है कि वो सभी को गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित कराना और लोगों को शिक्षा के मुताबिक रोजगार उपलब्ध करवाना।भारत देश कई तरह की समस्याओं से जूझ रहा है। शिक्षा भी उनमें से एक बड़ी समस्या है। यह समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है यदि हम इस समस्या का समाधान नहीं करेंगे तो आने वाले वषो में हमारे सामने पढे–लिखे बेरोजगार युवाओं की फौज होगी।सरकार को प्राथमिकता के साथ इसकी गंभीरता को समझते हुए सुधार हेतु तटस्थ कदम उठाने की जरूरत हैं।

2. कौन जिम्मेदार ?

प्राथमिक स्कूलों से आने वाले बच्चों को पढ़ना–लिखना नहीं आता। ऐसे में हम क्या कर सकते हैं? एक समय के बाद हमारे हाथ में ज्यादा कुछ नहीं होता। वे बताते हैं कि उनकी स्थिति ऐसे चौराहे पर खड़े शिक्षक की है जो हर साला सैकड़ों बच्चों को फेल होते हुए देखता है। एक उच्च माध्यमिक स्कूल के प्रधानाचार्य का कहना है, "शिक्षकों में पढ़ाने की क्षमता में भी गिरावट आई है। वे खुद किताबें पढ़नें में दिलचस्पी नहीं लेते। जिसके कारण उनकी समझ में बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है। इसके साथ–साथ अभी पाठ्यक्रम में बदलाव हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में तमाम बदलाव हो रहे हैं। जिसका सामना करने के लिए हमें अपने स्तर पर भी तैयारी करनी होगी। लेकिन हम उस तैयारी में कहीं न कहीं पीछे पड़ रहे हैं।"

ऐसे में सवाल उठता है कि अगर बच्चे फेल हो रहें हैं तो उसके लिए कौन जिम्मेदार है ?

सबसे खास बात कि जिम्मेदारी लेने से कतराने की सामान्य प्रवृत्ति लोगों में देखी जाती है। शिक्षक समुदाय भी इसका अपवाद नहीं है। वे भी बच्चों के पढ़ने–लिखने में पिछड़ने के लिए अभिभावकों का अशिक्षित होना, बच्चे के ऊपर घर पर ध्यान न देना, स्कूल में अनियमित होना, शिक्षा में होने वाले प्रयोग, दिनों दिन बढ़ती ट्रेनिंग, डाक के बढ़ते काम का हवाला देते हैं। इसके साथ ही शिक्षकों की कमी, शिक्षकों की पारिवारिक समस्याओं में उलझे होना, स्कूल में कम समय देना, छोटे बच्चों को पढ़ाने में कम दिलचस्पी लेना, विषय शिक्षकों का अभाव इत्यादि अनेक कारण गिनाते हैं। जो काफी हद तक सही हैं। मगर दूसरों पर अपने हिस्स की जिम्मेदारी थोपने से समस्या का समाधान निकलने की रही सही उम्मीद भी खत्म हो जाती है।

3. सूरत बदलनी चाहिए

ऐसी स्थिति में बदलाव होना चाहिए। ताकि शिक्षकों के बारे में लोगों की राय बदले। वे विश्वास कर सकें कि शिक्षक अपने सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए तत्पर हैं। वे समस्याओं का समाधान चाहते हैं और अपनी तरफ से हर संभव हल निकालने की कोशिश कर रहे हैं। लोग शिक्षकों की परेशानी समझ सकें, इसके लिए समुदाय, अधिकारियों और स्कूल के स्टॉफ का आपस में बैठकर ईमानदार बात करना बहुत जरूरी है। इससे समस्याओं का समाधान तलाशने का रास्ता निकालने में मदद मिलेगी। इसका एक तरीका समस्याओं की प्राथमिकता तय करने के बाद उनको क्रमबद्ध तरीके से हल करना हो सकता है।

उदाहरण के तौर पर अगर किसी स्कूल में बच्चे अनियमित हैं तो एसएमसी की बैठक में बात हो सकती है। प्रधानाध्यापक और शिक्षक समुदाय में लोगों से कारण जानने के लिए जा सकते हैं। बच्चों से बात कर सकते हैं कि वे स्कूल क्यों नहीं आते, उनका मन नहीं लगता क्या? या फिर परिवार के लोग उनके ऊपर घर का काम करने के लिए दबाव बनाते हैं। वास्तविक स्थितियों को समझने के बाद बनी राय समस्याओं के समाधान में मदद करेगी।

4. समाधान के लिए पहल करें शिक्षक

समुदाय के अतिरिक्त स्कूल के स्तर पर बच्चों को किस तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके बारे में भी सभी शिक्षकों को आपस में बैठकर बात करनी चाहिए कि कैसे कक्षा–कक्ष में शिक्षण प्रक्रिया को बेहतर बना सकते हैं, कैसे कोई अध्यापक साथी अध्यापक को पढ़ाने की प्रक्रिया को रोचक बनाने के लिए कुछ सुझाव दे सकता है। ताकि क्लास के ज्यादा से ज्यादा बच्चों की भागीदारी हासिल की जा सके। इससे बच्चों का शैक्षिक स्तर बढ़ेगा और पढ़ने में उनकी रुचि का निर्माण भी होगा। आखिर में कह सकते हैं कि शिक्षक खुद समस्याओं के समाधान की दिशा में पहल करें। ताकि अपने बारे में लोगों की सोच को बदल सकें। इससे उनको काम करने में समुदाय के जागरूक लोगों का सहयोग मिलेगा। अगर बच्चा पढ़ना–लिखना सीखता है। आत्मविश्वास के साथ सवालों के जवाब देता है तो अभिभावक भी स्कूल आते हैं कि कौन शिक्षक उनके बच्चों को इतने अच्छे से पढ़ा रहे हैं।

5. उपसंहार

भारत एक विशाल देश है और दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में शामिल है लेकिन विडंबना है कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को अब भी बेहतर नहीं कर सके हैं। भारत से छात्रों का पलायन निरंतर जारी है इसका सबसे बड़ा कारण शिक्षा की जर्जर स्थिति है। समिति–दर–समिति की रिपोर्ट को ठंडे बस्ते में डाल देना और बड़ी अदालतों के दिशा–निर्देशों को अनसुना कर देना सबसे बड़ी समस्या है। इसके अलावा शिक्षा के व्यवसायीकरण पर रोक न लगा पाना भी हमारी सरकारों की सबसे बड़ी नाकामी मानी जाती है। लिहाजा शिक्षा संबंधी समस्याओं पर गंभीर मंथन की जरूरत है। शिक्षण पद्धति से हमारा अभिप्राय उन सामान्य सिद्दांतो, अध्यापन व प्रबंध की उन तकनीको से हैं जिनका प्रयोग कक्षा कक्ष में अनुदेशन हेतु किया

जाता हैं । किसी कक्षा के लिए कौन सी शिक्षण पद्धति उपयुक्त है यह अध्यापक के शैक्षिक दर्शन, कक्षा की जनसंख्या, विषय क्षेत्र, छात्रों का स्तर, विद्यालय व कक्षा के उद्देश्यों पर निर्भर करता हैं ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. Shimazoe, J., and Aldrich, H. (2010) Group work can be gratifying: Understanding and overcoming resistance to cooperative learning. *College Teaching*, *58*, 52-57.

2. Karweit, N. L. & Madden, N. A. (2009). Effective Programs for Students At Risk.Boston:AllynandBacon.

3. Slavin, R. E. (2001) Synthesis of research on cooperative learning. Educational Leadership, 48, 71-82.

4. Slavin, R. E. (2005). Cooperative Learning. Boston: Allyn and Bacon.

5. Vaughan, W. 2002. Effects of Cooperative learning on achievement and attitude among students of color. Journal of Educational Research. 95 (6): 359-364.

6. Webb, M.D. (2004). The effects of the jigsaw cooperative learning technique on racial attitudes and academic achievement (Doctoral dissertation, California State University, Fresno, 1988). Masters Abstracts International, 32/01, 0354